RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-11
November -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

वर्तमान में महिलाओं के प्रति बढ़ता यौन शोषण एवं यौन उत्पीड़नः एक विश्लेषण

मनीष कुमार सैनी

(सीनियर रिसर्च फेलो), समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, हे.न.ब.गढ़वाल (केन्द्रिय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल) उत्तराखण्ड।

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 16 Nov 2019

Keywords
महिला, यौन उत्पीड़न, यौन हिंसा, सर्वोच्च न्यायालय एवं जाति।

***Corresponding Author**
Email: sainimanish730[at]gmail.com

ABSTRACT

महिला उत्पीड़न एक सार्वभौमिक प्रघटना है। कोई भी काल, स्थान और परिस्थियाँ रही हों, प्रत्येक समाज में महिलाओं की स्थिति सदैव ही दोयम दर्जे की रही है लेकिन वर्तमान में स्थितियाँ बदल रही हैं अब महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं लेकिन पूर्णता का अभाव है। पुरुष के समक्ष उसे सदैव ही कमजोर और निम्न स्तर का माना गया है तथा यह विश्वास प्रकट किया गया है कि उसे सदैव पुरुष के अधीन ही रहना चाहिए अब यह स्थिति भी बदल रही है भले ही थोड़ा अपवादस्वरूप हो लेकिन बदल रही है। यदि भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति की समीक्षा की जाये तो एक समय तो उसे बहुत ही श्रेष्ठ, सम्माननीय और गौरवपूर्ण समझा जाता था जब विभिन्न युगों में नारी महानता की अनेकानेक घटनाएं हुआ करती थीं और उनके त्याग, करूणा, दया, शुचिता और परोपकार से भरी पड़ी थीं। लिहाजा वर्तमान में हमें उन सब बातों को फिर से अम्ल में लाना होगा।

प्रस्तावना :

प्राचीन एवं अर्वाचीन विचारक नारी को संस्कृति एवं सभ्यता का मेरूदण्ड मानते हैं। विश्व की सभी संस्कृतियों में नारी के प्रति विशेष उदार और उन्नत विचार रखे गये हैं। नारी को शक्ति का महान भण्डार और परिवार की नींव माना गया है। चूंकि परिवार समुदाय की नींव हैं और समुदाय राष्ट्र की, इसीलिए नारी ही समाज व राष्ट्र की नौका की वास्तविक कर्णधार है।

महिला उत्पीड़न एक सार्वभौमिक प्रघटना है। कोई भी काल, स्थान और परिस्थियाँ रही हों, प्रत्येक समाज में महिलाओं की स्थिति सदैव ही दोयम दर्जे की रही है। पुरुष के समक्ष उसे सदैव ही कमजोर और निम्न स्तर का माना गया है तथा यह विश्वास प्रकट किया गया है कि उसे सदैव पुरुष के अधीन ही रहना चाहिए। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति की समीक्षा की जाये तो एक समय तो उसे बहुत ही श्रेष्ठ, सम्माननीय और गौरवपूर्ण समझा जाता है जबकि विभिन्न युगों में नारी महानता की अनेकानेक घटनाएं, उनके त्याग, करूणा, दया, शुचिता और परोपकार से भरी पड़ी हैं। परन्तु गौरव के इसी इतिहास के पीछे ही नारी के शोषण, अपमान और कष्टों की भी छुपी हुई है जिसे विभिन्न सामाजिक संदर्भो, समय और परिस्थितियों में सदैव ही उचित और न्यायपूर्ण ठहराया जाता रहा है।[1]

यदि हम यहाँ महिला उत्पीड़न की बात करें और वह भी भारतीय समाज व्यवस्था के वर्ण/जाति व्यवस्था में सबसे निचले स्तर के जाति समूह की महिलाओं का, तब तो इस बात को सिद्ध करना और भी आसान हो जाता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं का व्यापक स्तर पर उत्पीड़न हुआ है। अनुसूचित जाति भारतीय सामाजिक पद सोपान व्यवस्था में निम्नस्थ रही है। परम्परागत भारतीय समाज ने संस्तरीकरण की जिस परम्परागत व्यवस्था का अनुमोदन किया है उसके द्वारा भारतीय समाज में असमानता और विभेदीकरण को संस्थागत तथा वैध स्वरूप प्राप्त हुआ है। जाति पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था समूहों को न केवल श्रेणीबद्ध, असमान वर्गो में विभक्त करती है बल्कि यह व्यवस्था अत्यन्त जटिल, जन्म प्रदत्त और सामाजिक धार्मिक दृष्टि से मान्यता प्राप्त रही है। समाज के निम्न वर्ग जिन्हें शूद्र या आधुनिक काल में अनुसूचित जाति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वह अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक निर्योग्यताओं का शिकार रही है तथा विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक संरचनाओं, परम्परागत आर्थिक संबंधो और सामाजिक संस्थाओं के द्वारा उनके शोषण तथा उत्पीड़न को सामाजिक स्वीकृति प्रदान की गयी है। इसके फलस्वरूप भी भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंश सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त निम्न और असहाय परिस्थितियों में जीवन–यापन करता रहा है। शताब्दियों के शोषण, अन्याय और मुख्य सामाजिक सांस्कृतिक जीवन धारा के पृथकता के कारण अनुसूचित जाति समुदाय में दासता का मनोवृत्ति का विकास हुआ। इस समुदाय पर पड़ने वाला सामाजिक आर्थिक संरचना का दबाव इतना अधिक प्रभावशाली रहा, कि समुदाय के सदस्यों ने अपनी निम्न स्थिति को स्वीकार करना अधिक उचित माना। जिससे इस समुदाय की निष्क्रियता के कारण इन्हें 'अकर्मण्यता का निष्क्रीय पुंज' कहा जाता है। अनुसूचित जाति समुदाय ने परम्परागत सामाजिक व्यवस्था की असमानता और शोषण को अपने भाग्य और जीवनचक्र का एक आवश्यक

RRIJM 2015, All Rights Reserved

अंग मानकर व्यवस्था के प्रति किसी भी प्रकार का आक्रोश या प्रतिक्रिया करने की अपेक्षा मौन स्वीकृति को अधिक श्रेयस्कर माना है।[2]

चूँकि अनुसूचित जातियाँ सदैव ही अपने आप में समाज द्वारा सतायी गयी और शोषित जाति समूह रही हैं, भले ही वह पुरूष हो अथवा महिला। परन्तु यदि इसी जाति समूह की स्त्रियों की स्थिति की विवेचना करें तो ज्ञात होगा कि अनुसूचित जाति समूह की महिलाएँ उत्पीड़न की दोहरी व्यवस्था की शिकार रहीं हैं, न केवल महिला होने के कारण बल्कि जाति व्यवस्था में निम्नतर स्तर पर होने के कारण वे सदैव ही समाज द्वारा सतायी जाती रही हैं। जाति व्यवस्था के नाम पर अनेकानेक सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक निर्योग्यताओं को झेलने के साथ ही महिला होने के कारण भी वे ऐसी ही अनेकानेक निर्योग्यताओं, बंधनों, निषेधों, शोषण, अपमान, उत्पीड़न और अत्याचारों से जूझती रही हैं।[3]

बहुत समय से विशेष चिह्नित वर्गो एवं समुदायों के प्रति की गई सुनियोजित हिंसा भारतीय समाज का विशिष्ट लक्षण रहा है। परिवर्तन की प्रक्रिया में कई एक समाजों में हिंसा ही होती है और यह हिंसा विशेषकर तब होती है जब तत्कालीन समाज में आधारभूत विकल्प उभरकर आते हैं तथा शासनतन्त्र में उठा–पटक होती है। प्रायः ऐसी स्थिति में उस सामाजिक सत्ता में हिंसा के शिकार का निर्णय जन्म के आधार पर नहीं होता। चाहे कुछ भी हो, भारत में कुछ समुदायों के प्रति हुई हिंसा का स्वरूप निश्चित तौर पर ऐसी ही परिभाषा के अन्तर्गत जा सकता है। स्वतन्त्रता के समय से देश में उत्तरोत्तर जातिगत एवं दलगत हिंसा से बढ़ोत्तरी हुई है, जिस बाढ़ को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भी रोक नहीं पायी है। अपितु, कुछ स्थितियों में उसके कारण यह और भी अधिक गहराई हे। जबकि साम्प्रदायिकता हाल में देखी गई घटनाओं के समय उभरकर सामने आई, जिसकी जड़े उन घटनाओं से जुड़ी है जिनके कारण स्थिति विभाजन तक जा पहुंची, जातिगत हिंसा का इतिहास बहुत पुराना है और पकड़ भी दृढ़ है। इसकी विशिष्टया यह है कि प्रभुता सम्पन्न समुदाय की सामाजिक संरचना में स्वयं में इतनी गहरी पकड़ है कि कमजोर एवं निम्न वर्ग के लोगों तथा विशेषाधिकार सम्पन्न लोगों के लिए आचार संहिता का निर्धारण भी यही समुदाय करता है। हिन्दू समाज में सदियों पुराने यही पारस्परिक जातीय सम्बन्ध बाहरी एवं अन्दरूनी शक्तियों के प्रभाव के चलते गड़बड़ा गए हैं। हिंसा की उग्रता तथा आवृत्ति ऊंची जातियों के समुदायों की बौखलाहट भरी चेष्टाओं की ही प्रशाखा है और ऐसा इसलिए कि सरकारी नीति की सकारात्मकता के फलस्वरूप निम्न जाति के लोगों में बाध्यित दायित्य से छुटकारे की प्रक्रिया तथा उर्ध्वमुखी गतिशीलता के विरूद्ध ऊंची जाति के वर्गो के द्वारा अपनी संस्थापित प्रतिष्ठा को बचाने की चेष्टा की जाने लगी। हिंसा निर्दयता के विभिन्न रूप धारण कर लेती है और पूरे के पूरे समुदाय पर अत्याचार में परिवर्तित हो जाती है, जैसे कि बलात्कार, घरों में आगजनी और इससे भी बढ़कर सूक्ष्म ढंग–जैसे सामाजिक बहिष्कार–जिससे वह मूलभूत आवश्यकताओं तथा सेवाओं से वंचित हो जाए। इस प्रकार की वस्तुस्थिति को राज्य और समाज के बदलते, विकास होते वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में रखना होगा ताकि ज्ञान हो सके कि ऐसा क्यों होमा है और इसे किस प्रकार नियन्त्रण में लाया जा सकता है।

जातिगत हिंसा के निशाने पर बहुधा वही लोग होते हैं जो हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले क्रम पर आते हैं जो अनुसूचित जातियों अथवा दलितों के नाम से जाने जामे हैं तथा ये बाकी जातियों के अधिकारों तथा अपनी बाध्यताओं से अपरिवर्तनीय रूप से बंधे हुए हैं। 'छुआछूत' का चलन इसी सम्बन्ध का चलन है। जातीय आधार पर छुआछूत के आविर्भाव का इतिहास जटिल है।[4] जबकि इसकी उत्पत्ति के विषय में स्पष्टता एवं आम सहमति का नितान्त अभाव है। जबकि कुछ इसकी उत्पत्ति देश में कृषि प्रधान सभ्पता के विकास को मानते हैं तथा ऐसी सभ्यता में कृषीय जातियों अभ्युदय का कारण यह था कि कृषि संक्रिया के लिए हाथ से काम करने वाले कर्मकारों तक सुनिश्चित पहुंच बनी रहे।[5] कुछ इसकी उत्पत्ति भारतीय सभ्यता की विस्तारवादी प्रावस्था से जोड़ते हैं, जिसके कारण आर्यो ने मूल निवासियों पर न केवल विजय प्राप्त की बल्कि इसी के परिणामस्वरूप दासता में भी जकड़ दिया। ऋग्वैदिक युग के अन्तिम चरण में सामाजिक अवस्था में ये 'शूद्र' वही दास हैं जिन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था और इसका सम्बन्ध उनके इस समुदाय में जन्म से होता था।[6] इसके उद्गम की व्याख्या चाहे कुछ भी रही ही संस्थानिक ढांचे, जो समाज में सामाजिक आचरण को निर्देशित करते रहे हैं 'जाति व्यवस्था' की नाम पद्धति के अन्तर्गत सन्निविष्ट हैं। इसलिए मोटे तौर पर कहा जाए कि हिन्दू आबादी को सीधे–सीधे चार मुख्य वर्गो में बाँटने की व्यवस्था का अभिवेदन है, जिन्हें वर्ण के नाम से जाना गया है। इस व्यवस्था के शिखर पर हैं ब्राह्मण (पुजारी वर्ग) तथा अवरोही क्रम में क्षत्रिय (योद्धा वर्ग) और वैश्य (व्यापारी एवं हस्तशिल्पी वर्ग)।[7] शूद्र (मेहनतकश मजदूर तथा सेवारत वर्ग) व्यवस्था में निम्न दर्जे थे। अस्पृश्यों का इस योजना में कोई हिस्सा नहीं था। फिर भी समय के अन्तराल के साथ–साथ स्थिति की तात्कालिक आवश्यकता के रहते इस वर्गीकरण में पांचवां वर्ग भी आ जुड़ा जिसे वैसे तो कोई भी जातीय हैसियत नहीं दी गई परनतु सामाजिक परम्परा में यही वर्ग पूरक कड़ी अवश्व हुआ और इसका उल्लेख अस्पृश्य या 'जाति बहिष्कृतों' के रूप में हुआ। इस वर्ग की सदस्यता जन्म से निर्धारित होती थी और इसे वैयक्तिक प्रयास या सामाजिक मान्यता होने पर परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। ये चारों वर्ण तत्पश्चात् सैंकड़ो

उप–जातियों में विभक्त हो गए जिन्हें 'जाति' कहा जाता है और हर जाति के सामाजिक अस्वरण के अपने ही प्रतिमानक (मानदण्ड) हैं। इस जातीय ढांचे के छह विशिष्ट लक्षण हैं।

- समाज का खण्डीकरण
- क्रम–परम्परा (सामाजिक)
- खानपान तथा सामाजिक मेलजोल पर प्रतिबन्ध
- व्यवसाय में अप्रतिबन्धित चयन की कमी
- नागरिक तथा धार्मिक असमर्थताएं और भिन्न–भिन्न श्रेणियों के विशेषाधिकार
- विवाह पर प्रतिबन्ध।

समाज का चार समूहों में खण्डीकरण ऐसी अभेद व्यवस्था का धोतक है जिसमें प्रतिष्ठा और व्यवसाय दोनों ही है एक–दूसरे के साथ श्रेणीबद्ध नाते से जुड़े हुए हैं। इस पदानुक्रमिक व्यवस्था में ब्राह्मण का स्थान सबसे ऊँचा एवं अस्पृश्यों का स्थान सबसे नीचा है। यह जाति क्रम–परम्परा 'शुचिता' एवं 'अशुचिता' की अवधारणाओं के इर्द–गिर्द घूमती है। अस्पृश्यों को अधमतम गिना जाता है क्योंकि वे अपवित्र कार्य करते हैं। खान–पान तथा सामाजिक नातों पर प्रतिबंध हर जाति के लिए आचार संहिता को समावेशित किए हैं कि वह क्या देख सकते हैं, क्या नहीं देख सकते हैं, क्या छू सकते हैं, क्या नहीं छू सकते हैं, दूसरी जाति के लोगों से क्या स्वीकार कर सकते है, क्या स्वीकार नहीं कर सकते हैं। व्यवस्था पर प्रतिबंध का मनतवय है कि किसी भी तरह से क्रम–परम्परा को डगमगाने से बचाया जा सके। सिविल और धार्मिक निर्योग्यताओं के अधिदेशानुसार अस्पृश्य मुख्य गांव से दूरी पर ही बसें, गांव के कुअे से पानी न खींचे, गांव के मंदिर में दाखिल न हो, जनेउ छारण न करें, शिक्षा प्राप्त न करें तथा धार्मिक ग्रंथों का पाठ न करें। अस्पृश्यों से अपेक्षित था कि वे सबसे अधिक गंदे–धंधे जैसे कि गंदगी, जिसमें मानव मल भी शामिल था कि सफाई, मृत जानवरों की खालें उधड़ने तथा कब्रे खोदने का कार्य सम्मिलित था जाति से बाहर ही नहीं, वास्तव में उप–जातियों से भी बाहर विवाह का पूर्ण निषेध सुनिश्चित करता है कि एक समुदाय से दूसरे समुदाय में गतिशीलता न हो। परिणामतः अस्पृश्यों को सभी मामलों में सम्पूर्ण पृथकता का सामना करना पड़ता है, उग्र भेद–भाव का शिकार होना पड़ता है, निम्न मे से निम्न कार्य करने पड़ते हैं और उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि वे अपनी स्थिति में कोई परिवर्तन कर सकें। जातीय असमर्थताओं और अत्याचारों के परिवर्तन का संक्रमणकाल तीसरी और चौथी ईसवीं में खोजा गया है। इस युग में वर्ण व्यवस्था के समक्ष विचलन का संकट गहराया जबकि निर्धारित सामाजिक व्यवहार को अनुशासित और सीमा में रखने के लिए जोर–जबरदस्ति की आवश्यकता पड़ी। 'राजा' इस व्यवस्था को मर्यादा में रखने वाले के रूप में सामने आया जो भी इस व्यवस्था का उल्लंघन करते हैं उन्हें धर्मनिरपेक्ष दण्ड तो दिया ही जाता था, साथ ही धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा प्रायश्चित भी करना पड़ता था। इसी तरह ऊँची जाति के लोगों द्वारा नीची जाति के लोगों पर शारीरिक हिंसा को पावनता का दर्जा प्राप्त हुआ। यह स्थिति सदियों तक बनी रही। इस तरह दमन से पीड़ित समुदाय ने इस प्रबंध को चुपचाप स्वीकार कर लिया क्योंकि इससे बचाव का और कोई विकल्प ही नहीं था। सम्भवतः उन्हें यह विश्वास करने पर बाध्य ही कर दिया गया था कि अगर वे वर्तमान अनुशासन का पालन करेंगे तो अगले जन्म सुधार सम्भव होगा।

जब मुम्बई में दो महिलाओं के मासूम जिस्मों को कामांध युवकों की एक भीड़ नोच–खसोट रही थी, ठीक उसी समय कोच्चि में एक स्वडिस लड़की को भी गम्भीर छेड़–छाड़ का शिकार होना पड़ा। इन दोनों मामलों के बाद राष्ट्रीय महिला आयोग ने कहा कि दुष्कर्म की परिभाषा में परिवर्तन कर उसमें छेड़छाड़ और अपमानजनक टीका टिप्पणी को भी शामिल किया जाना चाहिए ताकि औरत को एक वस्तु की तरह देखने वाले को सबक सिखाया जा सके। यौन उत्पीड़न एक ग्लोबल प्रक्रिया है जिसकी पीड़ित गांव की अनपढ़ औरत भी हो सकती है तो महानगर की अत्याधुनिक युवति भी। इसी प्रकार यौन उत्पीड़न का दोषी गांव का किसान भी हो सकता है तो महानगर की किसी कॉर्पोरेट कम्पनी का सीईओ भी यौन उत्पीड़न के मामले में लिप्त हो सकता है और तो और अमेरिका पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन भी मोनिका लेविंसकी के यौन उत्पीड़न के दोषी पाये गये थे। हमारे आधुनिक समाज में तो औरतें यौन उत्पीड़न का शिकार होती ही हैं लेकिन पाकिस्तान, बांगलादेश और सउदी अरब जैसे देशों में भी यौन उत्पीड़न के मामले भी कम नहीं हैं। एक सर्वेक्षण के नतीजे बताते हैं कि पाकिस्तान की 80 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं, कार्यस्थल पर यौन शोषण का शिकार होती हैं। 'अलायंस अगेंस्ट सैक्सुअल हैरासमेंट' नामक एक गैर सरकारी संगठन द्वारा कराये गये सर्वे के द्वारा पाकिस्तान में कुल कामकाजी महिलाओं में से 78.83 प्रतिशत महिलाओं को अपने कार्य स्थल पर यौन शोषण का शिकार होना पड़ता है।

उपरोक्त सर्वे में नर्सों, घरेलू नौकरियों, निजी एवं सरकारी संगठनों में पर्सनल सेक्रेटरी, रिसेप्शनिस्ट आदि जैसे कार्य करने वाली युवतियों और मॉल्स आदि में कार्य करने वाली लड़कियों से बात की गई थी लगभग 21 प्रतिशत महिलाओं ने तो यौन शोषण के मामले में कुछ बोलने से ही इनकार कर दिया जबकि अधिकतर महिलाओं का मानना था उन्हें एकाधिक बार कार्य स्थल पर यौन शोषण का शिकार होना पड़ा था। सर्वे के दौरान जिन नर्सों से बात की गई उनमें 58 प्रतिशत महिलाओं की उम्र 16 से 21 वर्ष के बीच ही थी। इन नर्सों का उनके साथी सहकर्मियों, मरिजों या उनके रिश्तेदारों और डॉक्टरों तक ने यौन शोषण किया था।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

अभी 10 साल पहले तक यौन उत्पीड़न की परिभाषा काफी विवादित थी। विवाद यह था कि किस कृत्य को यौन उत्पीड़न माना जाये और किस कृत्य को यौन उत्पीड़न के दायरे से बाहर रखा जाये। कई बार ऐसा होता है कि कोई पुरुष किसी महिला को न तो कुछ कहता है और न ही उसे स्पर्श करता है लेकिन फिर भी पुरुष की हरकतों के कारण महिला को शर्मिंदा होना पड़ता है। क्या पुरुष के इस 'मौनकृत्य' को यौन उत्पीड़ कहेंगे? इस विवाद का समाधान किया सर्वोच्च न्यायालय ने। उसने 13 अगस्त, 1997 को अपने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय में कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न को विस्तार से परिभाषित किया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन सभी कृत्यों को यौन उत्पीड़न की परिभाषा में शामिल कर लिया जिनके कारण किसी महिला को शर्मिंदगी उठानी पड़ती है। अपनी परिभाषा में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित कृत्यों को 'कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न' के अन्तर्गत रखा गया है–

1. किसी महिला से अश्लील इशारे करना।
2. महिला पर सेक्स संबंधी फब्तियाँ कसना।
3. किसी महिला को यौन–संबंध स्थापित करने के लिए मजबूर करना।
4. महिला से यौन–संबंधों की मांग करना।
5. महिला को बेवजह स्पर्श करना।
6. महिला के साथ किसी भी प्रकार का भौतिक, मौखिक या अमौखिक यौन कृत्य करना।
7. महिला को अश्लील चित्र, साहित्य आदि दिखाना।
8. महिला को अश्लील चित्र, साहित्य, फिल्म (पोर्नोग्राफी) आदि देखने के लिए प्रेरित करना।

यदि किसी महिला के सामने सार्वजनिक रूप से अश्लील चित्र, साहित्य आदि प्रदर्शित किया जाये तो महिला को बेहद शर्मिंदगी महसूस होती है। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने इस कृत्य को यौन उत्पीड़न माना है। कई बार तो ऐसा भी होता है कि कार्यालय में पुरुष सहकर्मी या बॉस, महिला की आर्थिक मजबूरी का लाभ उठाना चाहता है। इसके लिए वह महिला को जब–तब आर्थिक सहायता देता रहता है ताकि 'समय' आने पर उसके अहसानों तले दबी महिला उसकी किसी अनैतिक मांग को भी नकार न सके। सर्वोच्च न्यायालय ने इस कृत्य को भी यौन उत्पीड़न माना है। यदि कोई व्यक्ति किसी महिला को लालच देकर अथवा उसे मजबूर करके सेक्स के लिए उसकी 'सहमति' प्राप्त करले तो इसे भी सर्वोच्च न्यालय ने यौन उत्पीड़न माना है।[9] इस तरह से सर्वोच्च न्यायालय ने उन सभी कृत्यों पर अंकुश लगाने का प्रयास किया है जो महिला को जाने–अनजाने में क्षति पहुँचाने का प्रयास करते हैं।

सन्दर्भ :

1. छिल्लर, मंजुलता (2017), 'भारतीय समाज में महिला उत्पीड़न', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृष्ठ सं : 1–2।
2. नाटाणी, प्रकाश नारायण (2011), 'कन्या भ्रूणहत्या और महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा' बुक एनक्लेव, जयपुर, पृष्ठ सं : 126।
3. छिल्लर, मंजुलता (2017), 'भारतीय समाज में महिला उत्पीड़न', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृष्ठ सं : 3।
4. नवल, टी० आर० (2000), 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण)', पृष्ठ सं : 4–7।
5. अनुसूचित जातियों के प्रति अत्याचार निवारण रिपोर्ट (2004), राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली, पृष्ठ सं : 1–2।
6. नवल, टी० आर० (2000), 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण)', पृष्ठ सं : 4।
7. मानवाधिकार निगरानी (1999), टूटी जनता, भारत में अस्पृश्यता के विरूद्ध जातीय हिंसा, पृष्ठ सं : 25।
8. अनुसूचित जातियों के प्रति अत्याचार निवारण रिपोर्ट (2004), राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली, पृष्ठ सं : 2–3।
9. सिंह, निशांत (2008), 'महिला विधि', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ सं० : 77–79।

RRIJM 2015, All Rights Reserved